रामायण का काव्यत्व → एक ऋषि की रचना होने पर भी संहिता न कहलाकर काव्य कहलाना - यह विशेषता रामायण को ही प्राप्त है। रस - भावपूर्णता, मधुरता, चमत्कार-सारता आदि जो-जो गुण काव्य की उत्तमता के परिचायक हैं उन सबकी की दृष्टि से यह काव्य प्रथम गणनीय है। वस्तुतः कवियों के द्वारा विकसित जो-जो विशेषताएँ हैं, उन सबका मूल स्रोत यही है।

संगीतमय काव्य स्रोत, नीतिमय सुन्दर अभिव्यञ्जना, मधुरतम दिव्य भाव प्रवाह, धर्ममय विचार - विमर्श, शिल्पमय सुन्दर शब्द विन्यास, नृत्यमय घटना संघात, चित्रमय सालंकार चरित्र चित्रण, चातुर्यपूर्ण संलाप - विलाप, आत्ममय सम्बन्ध निर्वाह, सृष्टि - विसृष्टिमय लोकोत्तर सुमृदु कल्पना, मनोमोहक भाषा - सौष्ठव, मूर्तिमय छन्दश्छटा, रसात्मक कथा प्रसङ्ग, विश्लेषणात्मक विवाद - संवाद, विचित्र प्रकृति चित्रण, चरित्रात्मक महामहिम जीवनादर्श और सौन्दर्य - माधुर्य - शिवात्मक काव्योचित स्वर्गीय संदेश - वाल्मीकिकृत रामायण की निजी विशेषता है। सम्भवतः इसीलिए कहा गया है - 'नास्ति रामायणात् परम्' अर्थात् रामायण से बढ़कर कोई उत्तम ग्रन्थ नहीं है।

वस्तुतः रामायण रस, अलंकार, चमत्कार, गुणत्रय, ध्वनि आदि का अक्षय स्रोत है। वाल्मीकि की शैली को वैदर्भी शैली कह सकते हैं। इसमें भाव - भाषा का समन्वय, सरलता, सुबोधता आदि सभी गुण सन्निहित हैं। इसमें प्राकृतिक दृश्यों एवं प्रकृति का मनोहारी वर्णन प्राप्त होता है।

रामायण की काव्यशैली की एक प्रधान विशेषता है- सरल पदविन्यास के द्वारा अपने वक्तव्य को उदात्त स्तर पर लाकर अपूर्व रमणीयता की सृष्टि करना। लम्बे समास नहीं हैं, घुमा - फिराकर बातें कहीं नहीं कही गई है, बातचीत का वातावरण प्रायः उपस्थित कर दिया गया है और अपने चारों ओर के संसार से पाठक को विमुक्त रखने का सफल प्रयास है। वाल्मीकि की शैली में वह गुण है, जिससे वे पाठक पर यह प्रभाव जमाते हैं कि उन्होंने जिस किसी आख्यान या वर्णन को छुआ है किया, उसे उन्होंने अपनी

Scanned with CamScanner

आँखों से देखा भी है। वाल्मीकि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। प्रसंगानुकूल तथा भावानुकूल शब्दावली के चयन पर आदिकवि विशेष ध्यान देते हैं। उदाहरणस्वरूप -

"रात्रिः शशांकोदितसौम्यवक्त्रा तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति, नारीव शुक्लांशुकसंवृताङ्गी॥"

वाल्मीकि रामायण रसमयी रचना है। ~~सभा~~ इसमें प्रायः सभी रस प्राप्त होते हैं। इनमें करुण, शृंगार और वीर प्रमुख हैं। करुण रस अंगी है और अन्य रस अंग। इस सम्बन्ध में विद्वान एकमत है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन की भी यही स्पष्ट मान्यता है। रामायण का आरम्भ करुण से होता है तथा राम के सामने सीता के पृथ्वी के भीतर अन्तर्धान होने के दृश्य से रामायण का अन्त भी 'करुण' से ही होता है—

"रामायणे हि करुणो रसः। स्वयमादिकविना सूचितः 'शोकः श्लोकत्वमागतः' इत्येवंवादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपस्थयता।"

वाल्मीकि के करुण रस भाव तत्त्व को लक्ष्य करके महाकवि कालिदास ने लिखा-

"तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाययातः।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः॥"

उत्तरकाण्ड में सीता के पृथ्वी के भीतर अन्तर्धान की घटना के बाद राम की मनोदशा का जो वर्णन वाल्मीकि ने किया है वह विलक्षण है-

"दण्डकाष्ठमवष्टभ्य बाष्पव्याकुलितेक्षणः।
अवाक्शिरा दीनमना रामो ह्यासीत् सुदुःखितः॥
स रुदित्वा चिरं कालं बहुशो बाष्पमुत्सृजन्।
क्रोधशोकसमाविष्टो रामो वचनमब्रवीत्॥
अभूतपूर्वं शोकं मे मनः स्रष्टुमिवेच्छति।
पश्यतो मे यथा नष्टा सीता स्त्रीरत्न रूपिणी॥
सादर्शनं पुरा सीता लङ्कां पारे महोदधेः।
ततश्चापि मयाऽऽनीता किं पुनर्वसुधातलात्॥
वसुधे देवि भवति सीता निर्यात्यतां मम।
दर्शयिष्यामि वा शोकं यथा मामवगच्छसि॥

कामं श्वश्रूर्ममैव त्वं त्वत्सकाशात् तु मैथिली।
कर्षता फालहस्तेन जनकेनोद्धृता पुरा ॥
तस्मान्निर्यात्यतां सीता विवरं वा प्रयच्छ मे।
पाताले नाकपृष्ठे वा वसेयं सहितस्तया ॥
आनय त्वं हि तां सीतां मत्तोऽहं मैथिलीकृते।
न मे दास्यसि चेत् सीतां यथारूपां महीतले ॥
सपर्वतवनां कृत्स्नां विधमिष्यामि ते स्थितम्।
नाशयिष्याम्हं भूमिं सर्वभापो भवन्त्विह ॥"
(7/98/2-10)

अर्थात्

भगवान् राम बहुत दुःखी हुए। उनका मन उदास हो गया और वे गूलर के दण्डे का सहारा लिए खड़े हो सिर झुकाये नेत्रों से आँसू बहाने लगे। बहुत देर तक रोकर बारम्बार आँसू बहाते हुए क्रोध और शोक से युक्त श्री रामचन्द्रजी इस प्रकार बोले— आज मेरा मन अभूतपूर्व शोक में डूबना चाहता है; क्योंकि इस समय मेरी आँखों के सामने से मूर्तिमती लक्ष्मी के समान सीता अदृश्य हो गयीं। पहली बार सीता समुद्र के उस पार लङ्का में जाकर मेरी आँखों से ओझल हुई थी। किन्तु जब मैं वहाँ से भी उन्हें लौटा लाया, तब पृथ्वी के भीतर से ले आना कौन बड़ी बात है? पूजनीये भगवति वसुन्धरे! मुझे सीता को लौटा दो; अन्यथा मैं अपना क्रोध दिखाऊँगा। मेरे प्रभाव कैसा है? यह तुम जानती हो। देवि! वास्तव में तुम्हीं मेरी सास हो। राजा जनक हाथ में फाल लिए तुम्हीं को जोत रहे थे, जिससे तुम्हारे भीतर से सीता का प्रादुर्भाव हुआ। अतः या तो तुम सीता को लौटा दो अथवा मेरे लिए भी अपनी गोद में जगह दो; क्योंकि पाताल हो या स्वर्ग, मैं सीता के साथ ही रहूँगा। तुम मेरी सीता को लाओ। मैं मिथिलेशकुमारी के लिए मतवाला हो गया हूँ। यदि इस पृथ्वी पर तुम उसी रूप में सीता को मुझे नहीं लौटा देती तो मैं पर्वत और वनसहित तुम्हारी स्थिति को नष्ट कर दूँगा। सारी भूमि का विनाश कर डालूँगा। फिर भले ही सबकुछ जलमय हो जाए।

✓ करुण रस के कुछ अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं। कैकेयी से रामवनवास सम्बन्धी वरयाचन के अनन्तर राजा दशरथ पश्चाताप करते हुए विलाप

करते हैं –

"कृपणं बत वैदेही श्रोष्यति द्वयमप्रियम्।
मां च पञ्चत्वमापन्नं रामं च वनमाश्रितम्॥
नहि राममहं दृष्ट्वा प्रवसन्तं महावने।
चिरं जीवितमाशासे रुदन्तीं चापि मैथिलीम्॥" (2/12/72-74)

अर्थात् निश्चय ही वैदेही दो करुण बातों को सुनेगी – मेरी मृत्यु और राम का वनवास। मैं राम के वनवास और रोती हुई सीता को देखकर अब देरतक जीवित नहीं रह सकूँगा।

वीररस का परिपाक महर्षि वाल्मीकि ने कुम्भकर्ण के अप्रतिम वर्णन में किया है।

"स जृम्भमाणोऽतिबलः प्रबुद्धस्तु निशाचरः।
निःश्वासस्यास्य संजज्ञे पर्वतादिव मारुतः॥
रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद् बभौ।
युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव दिधक्षतः॥
तस्य दीप्ताग्निसदृशे विद्युत्सदृशवर्चसी।
ददृशाते महानेत्रे दीप्ताविव महाग्रहौ॥"
(6/60/59-61)

अर्थात्
जम्हाई लेता हुआ वह (कुम्भकर्ण) अत्यन्त बलशाली निशाचर जब जगा, तब उसके मुख से जो साँस निकलती थी, वह पर्वत से चली हुई वायु के समान प्रतीत होती थी। नींद से उठे हुए कुम्भकर्ण का वह रूप प्रलयकाल में समस्त प्राणियों के संहार की इच्छा रखनेवाले काल के समान जान पड़ता था। उसकी दोनों बड़ी-बड़ी आँखें प्रज्वलित अग्नि और विद्युत् के समान दीप्तिमती दिखाई देती थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो दो महान् ग्रह प्रकाशित हो रहे हों।

पुनश्च,
"अद्य राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम्।
दारयिष्ये महेन्द्रं वा शीतयिष्ये तथानलम्॥"
(6/60/69)

अर्थात् अच्छा तो आज मैं राक्षसराज के भय को उखाड़ फेंकूँगा। महेन्द्र (पर्वत या इन्द्र) को भी चीर डालूंगा और अग्नि को भी ठंडा कर दूँगा।

Scanned with CamScanner

दृश्य

"अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबलान्।
यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ॥
तानहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि।
गिरिभात्रशरीरस्य शितशूलधृस्य मे॥
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभीयाद् वै पुरंदरः।
अथ वा त्यक्तशस्त्रस्य मृद्गतस्तरसा रिपून्॥
न मे प्रतिमुखः कश्चित् स्थातुं शक्तो जिजीविषुः।
नैव शक्त्या न गदया नासिना निशितैः शरैः॥
हस्ताभ्यामेव संरभ्य हनिष्यामि सवज्रिणम्।
यदि मे मुष्टिवेगं स राघवोऽद्य सहिष्यति॥
ततः पास्यन्ति बाणौघा रुधिरं राघवस्य मे।"

(6/63/43-48)

अर्थात्

तुम्हारे महाबली शत्रु यदि इन्द्र, कुबेर, यम, अग्नि, वायु और वरुण भी हों तो मैं उनसे भी युद्ध करूँगा तथा उन सबको उखाड़ फेंकूँगा। मेरा पर्वत के समान विशाल शरीर है। मैं हाथ में तीखा त्रिशूल धारण करता हूँ और मेरी दाढ़ें भी बहुत तीखी हैं। मेरे सिंहनाद से इन्द्र भी भय से थर्रा उठेंगे। अथवा यदि मैं शस्त्र त्यागकर भी वेगपूर्वक शत्रुओं को रौंदता हुआ रणभूमि में विचरने लगूँ तो कोई भी जीवित रहने की इच्छा वाला पुरुष मेरे सामने नहीं ठहर सकता। मैं न तो शक्ति से, न गदा से, न तलवार से और न पैने बाणों से ही काम लूँगा। रोष से भरकर केवल दोनों हाथों से ही वज्रधारी इन्द्र जैसे शत्रु को भी मौत के घाट उतार दूँगा। यदि राम आज मेरी मुट्ठी का वेग सह लेंगे तो मेरे बाणसमूह अवश्य ही उनका रक्तपान करेंगे।

✓आर्षकवि वाल्मीकि प्रकृति के प्रेमी कवि हैं। प्रकृति के इस अनन्य प्रेमी ने प्रायः सभी वर्णनों प्राकृतिक तत्त्वों का आश्रय लिया है। उन्होंने प्रकृति के पूर्ण और संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किए हैं। वाल्मीकि न केवल बाह्य प्रकृति के विशद् चित्रण में असाधारण पटु हैं, अपितु अन्तः प्रकृति के निरूपण में ही सिद्धहस्त हैं।

प्राकृतिक वर्णनों में कवि ने वनस्पतियों का आश्रय अधिक लिया है। अयोध्याकाण्ड में वनस्पतियों से शोभायमान राजपथ का अत्यन्त सुन्दर चित्र खींचा है आर्षकवि ने-

"चन्दनानां च मुख्यानामगुरूणां च संचयैः।
उत्तमानां च गन्धानां क्षौमकौशाम्बरस्य च॥
अविद्धाभिश्च मुक्ताभिरुत्तमैः स्फाटिकैरपि।
शोभमानस्बाधं तं राजपथमुत्तमम्॥"
(2/17/3-5)

श्रीराम और वनस्पतियों के सम्बन्ध का अत्यन्त सुन्दर चित्र आदिकवि ने प्रस्तुत किया है-

"आपगाः कृतपुण्यास्ताः पद्मिन्यश्च सरांसि च।
येषु यास्यति काकुत्स्थो विगाह्य सलिलं शुचि॥"
(2/48/9)

अर्थात उन नदियों, कमलमण्डित बावड़ियों तथा सरोवरों ने अवश्य ही बहुत पुण्य किया होगा जिनके पवित्र जल में स्नान करके श्रीरामचन्द्र आगे जायेंगे।

त्रिपथगामिनी दिव्यनदी गंगा का वर्णन कितना हृदयावर्जक है-

"क्वचित् तीररुहैर्वृक्षैर्मालाभिरिव शोभिताम्।
क्वचित् फुल्लोत्पलच्छन्नां क्वचित् पद्मवनाकुलाम्॥
क्वचित् कुमुदखण्डैश्च कुड्मलैरुपशोभिताम्।
नानापुष्परजोध्वस्तां समदामिव च क्वचित्॥"
(2/50/20-21)

अर्थात
पतितपावनी गंगा वनस्पतियों के द्वारा शोभायमान है। कहीं तटवर्ती वृक्ष मालाकार होकर उनकी शोभा बढ़ाते हैं तो कहीं उनका जल खिले हुए उत्पलों से आच्छादित है और कहीं कमलवनों से व्याप्त। कहीं कुमुदसमूह तथा कहीं कलिकाएं उन्हें सुशोभित करती हैं तो कहीं नाना प्रकार के पुष्पों के परागों से व्याप्त होकर मदमत्त नारी के समान प्रतीत होती है।

Scanned with CamScanner

चित्रकूट जाते हुए श्रीराम द्वारा वनस्पतियों का वर्णन अत्यन्त आह्लादकारी है—

"आदीप्तानिव वैदेहि सर्वतः पुष्पिता नगान्।
स्वैः पुष्पैः किंशुकान् पश्य मालिनः शिशिरात्यये॥
पश्य भल्लातकान् बिल्वान् नरैरनुपसेवितान्।
फलपुष्पैरवनतान् नूनं शक्ष्याम जीवितुम्॥"
(2/56/6-7)

अर्थात् हे विदेहराजनन्दिनी! इस वसन्त ऋतु में सब ओर से खिले हुए इन पलाशवृक्षों को देखो। ये अपने ही पुष्पों से पुष्पमालाधारी से प्रतीत होते हैं और उन फूलों की अरुणप्रभा के कारण प्रज्वलित होते से दिखाई देते हैं। देखो, ये भिलावे और बेल के पेड़ अपने फूलों और फलों के भार से झुके हुए हैं। दूसरे मनुष्यों का यहाँ तक आना सम्भव न होने से ये उनके द्वारा उपयोग में नहीं लाए गए हैं, अतः निश्चय ही इन फलों से हम जीवन-निर्वाह कर सकते हैं।

पम्यासरोवर का बड़ा मनोहारी चित्र कवि ने खींचा है। तिलक, बिजौरा, वट, लोध्र, खिले हुए करवीर, पुष्पित नागकेसर, मालती, कुन्द, झाड़ी, बरगद, वञ्जुल, अशोक, छितवन, कतक, माधवीलता तथा अन्य नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित हुई पम्पा भाँति-भाँति की ~~वस्त्र~~ वस्त्राभूषणों से सजी हुई युवती के समान जान पड़ती थी—

"तिलकैर्बीजपूरैश्च वटैः शुक्लद्रुमैस्तथा।
पुष्पितैः करवीरैश्च पुंनागैश्च सुपुष्पितैः॥
मालतीकुन्दगुल्मैश्च भण्डीरैर्निचुलैस्तथा।
अशोकैः सप्तवर्णैश्च कतकैरतिमुक्तकैः॥
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः प्रमदामिव शोभिताम्॥"
(3/75/23-25)

समुद्र में गिरे फल जब डूबते नहीं थे तो विचित्र शोभा को प्राप्त करते थे। इन फूलों के कारण महासागर तारों से भरे हुए आकाश के समान सुशोभित होता था-

"लघुत्वेनोपपन्नं तद् विचित्रं सागरेऽपतत्।
द्रुमाणां विविधं पुष्पं कपिवायुसमीरितम्।
ताराचितमिवाकाशं प्रबभौ स महार्णवः॥"
(5/1/53)

अर्थात् हनुमान्जी के शरीर से उठी हुई वायु से प्रेरित हो वृक्षों के भाँति-भाँति के पुष्प अत्यन्त हल्के होने के कारण जब समुद्र में गिरते थे तब डूबते नहीं थे। इसलिए उनकी विचित्र शोभा होती थी। उन फूलों के कारण वह महासागर तारों से भरे हुए आकाश के समान सुशोभित होता था।

प्रकृति की विभावना का अद्वितीय आदर्श रामायण में है। वाल्मीकि की प्रकृति जीती-जागती और किंकर्तव्य निर्धारिणी है। रावण वन में सीता के पास आता है। तब सीता से सहानुभूति रखने वाले वृक्षादि-

"तमुग्रं पापकर्माणं जनस्थानगता द्रुमाः।
सन्दृश्य न प्रकम्पन्ते न प्रवाति च मारुतः॥
शीघ्रस्रोताश्च तं दृष्ट्वा वीक्षन्तं रक्तलोचनम्।
स्तिमितं गन्तुमारेभे भयाद् गोदावरीं नदीं॥"

उपर्युक्त विधि से अनेक स्थानों पर प्रकृति का मानवीकरण किया गया है।

प्रकृति में सौन्दर्य का सन्निवेश करने के लिए कवि की निर्मुक्त कल्पना अखिल ब्रह्माण्ड को मानो हस्तामलकवत् देखती है। शरद् ऋतु का तडाग कवि की दृष्टि में वर्णनीय है और कल्पना से वह आकाश बन गया—

"सप्तैकहंसं कुमुदैरुपेतं महाह्रदस्थं सलिलं विभाति।
चन्द्रेण विमुक्तं निशि पूर्णचन्द्रं तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम्॥
(4/30/48)

यहाँ पर कवि को सरोवर में सोता हुआ हंस आकाश में विराजमान चन्द्र प्रतीत होता है।

Scanned with CamScanner